आगम-टीका परम्परा को आचार्य श्री का योगदान

☐ डॉ० धर्मचन्द जैन

आगम-मनीषी आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी म० सा० का आत्म-जीवन तो आगम-दीप से आलोकित था ही, किन्तु वे उसका प्रकाश जन-जन तक पहुँचाने हेतु प्रयासरत रहे। इसी कारण आचार्य प्रवर आगमों की सुगम टीकाएँ प्रस्तुत करने हेतु सन्नद्ध हुए। आचार्य प्रवर का लक्ष्य आगम के गूढ़ार्थ को सरलतम विधि से प्रस्तुत करना रहा।

आचार्य श्री की दृष्टि आगम-ज्ञान को शुद्ध एवं सुगम रूप में संप्रेषित करने की रही। यही कारण है कि आचार्य प्रवर ने पूर्ण तन्मयता से आगमों की प्रतियों का संशोधन भी किया। उन्हें संस्कृत छाया, हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वय पूर्वक शब्दार्थ एवं भावार्थ से समन्वित कर सुगम बनाया। फलतः आचार्य प्रवर को युवावस्था में ही अपनी 'नन्दी सूत्र' आदि की टीकाओं से देशभर के जैन सन्तों में प्रतिष्ठित स्थान मिला। आचार्य श्री की सर्व प्रथम संस्कृत-हिन्दी टीका 'नन्दी सूत्र' पर प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् 'बृहत्कल्प सूत्र' पर सम्पादित संस्कृत टीका, 'प्रश्न व्याकरण सूत्र' पर व्याख्या एवं 'अन्तगडदसा सूत्र' पर टीका का प्रकाशन हुआ। जीवन के ढलते वर्षों में आपके तत्त्वावधान में लिखित 'उत्तराध्ययन सूत्र' एवं 'दशवैकालिक सूत्र' पर हिन्दी पद्यानुवाद के साथ व्याख्याएँ प्रकाशित हुईं। इस प्रकार आचार्य प्रवर ने दो अंग सूत्रों—'प्रश्न व्याकरण' एवं 'अन्तगडदसा' पर, तीन मूल सूत्रों 'नन्दी सूत्र' 'उत्तराध्ययन' एवं 'दशवैकालिक' पर तथा एक छंद सूत्र 'बृहत्कल्प' पर कार्य किया।

आगम-टीका परम्परा का एक लम्बा इतिहास है। पाँचवीं शती से अब तक अनेक संस्कृत, हिन्दी एवं गुजराती टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। प्राचीन प्रमुख टीकाकार रहे हैं—आचार्य हरिभद्र सूरि, आचार्य अभयदेव सूरि, आचार्य शीलांक, आचार्य मलयगिरि आदि। अर्वाचीन टीकाकारों में प्रमुख हैं—पं० मुनि श्री घासीलालजी म०, श्री अमोलक ऋषिजी म०, आचार्य श्री आत्मारामजी म०, आचार्य श्री तुलसी आदि। परन्तु अद्यावधि प्रकाशित संस्कृत, हिन्दी एवं गुजराती टीकाओं में आचार्य प्रवर हस्तीमलजी म० सा०

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

की टीकाएँ सुगम, सुबोध एवं आगम-मन्तव्य के अनुकूल हैं। आगम-टीका परम्परा में संस्कृत छाया एवं प्राकृत शब्दों के अर्थ व विवेचन के साथ हिन्दी पद्यानुवाद का समावेश आचार्य प्रवर की मौलिक दृष्टि का परिचायक है। आचार्य प्रवर कृत प्रत्येक टीका का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

नन्दी सूत्र :

द्वितीय विश्व युद्ध के समय जब आचार्य प्रवर महाराष्ट्र क्षेत्र में विचरण कर रहे थे, तब संवत् १९९८ (सन् १९४२ ई०) में आचार्य प्रवर के द्वारा संशोधित एवं अनूदित 'श्रीमन्नन्दी सूत्रम्' का सातारा से प्रकाशन हुआ। प्रकाशक थे रायबहादुर श्री मोतीलालजी मूथा।

'नन्दी सूत्र' का यह संस्करण विविध दृष्टियों से अद्वितीय है। इसमें प्राकृत मूल के साथ संस्कृत छाया एवं शब्दानुलक्षी हिन्दी अनुवाद दिया गया है। जहाँ विवेचन की आवश्यकता है वहाँ विस्तृत एवं विशद विवेचन भी किया गया है। 'नन्दी सूत्र' के अनुवाद-लेखन में आचार्य मलयगिरि और हरिभद्र की वृत्तियों को आधार बनाया गया है, साथ ही अनेक उपलब्ध संस्करणों का सूक्ष्म अनुशीलन कर विद्वान् मुनियों से शंका-समाधान भी किया गया है।

आचार्य प्रवर ने जब 'नन्दी सूत्र' का अनुवाद लिखा तब 'नन्दी सूत्र' के अनेक प्रकाशन उपलब्ध थे, परन्तु उनमें मूल पाठ के संशोधन का पर्याप्त प्रयत्न नहीं हुआ था। आचार्य प्रवर ने यह बीड़ा उठाकर 'नन्दी सूत्र' के पाठों का संशोधन किया। 'नन्दी-सूत्र' के विविध संस्करणों में अनेक स्थलों पर पाठ-भेद था, यथा—स्थविरावली के सम्बन्ध में ५० गाथाएँ थीं तथा कुछ में ४३ गाथाएँ ही थीं। इसी प्रकार 'दृष्टिवाद' के वर्णन में भी पाठ-भेद मिलता है। इन सब पर पर्यालोचन करते हुए आचार्य प्रवर ने ऊहापोह किया।

'नन्दी सूत्र' के इस संस्करण की विद्वत्तापूर्ण भूमिका का लेखन उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज ने किया। इस सूत्र के प्रकाशन का प्रबन्ध पं० दुःखमोचन झा ने किया जो आचार्य प्रवर के गुरु तो थे ही किन्तु आचार्य प्रवर की विद्वत्ता एवं तेजस्विता से अभिभूत भी थे। स्वयं आचार्य प्रवर ने 'नन्दी सूत्र' की व्यापक प्रस्तावना लिखकर पाठकों के ज्ञान-आरोहण हेतु मार्ग प्रशस्त किया। प्रस्तावना में 'नन्दी सूत्र' की शास्त्रान्तरों से तुलना भी प्रस्तुत की है।

आचार्य प्रवर ने ३१ वर्ष की लघुवय में 'नन्दी सूत्र' की ऐसी टीका प्रस्तुत कर तत्कालीन आचार्यों एवं विद्वानों में प्रतिष्ठा अर्जित कर ली थी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस संशोधित 'नन्दी सूत्र' संस्करण के अनेक परिशिष्ट हैं । प्रथम परिशिष्ट पारिभाषिक एवं विशिष्ट शब्दों की व्याख्या पर है । द्वितीय परिशिष्ट में 'समवायांग सूत्र' में वर्णित द्वादशांगों का परिचय है । तृतीय परिशिष्ट 'नन्दी सूत्र' के साथ शास्त्रान्तरों के पाठों की समानता पर है । चौथा परिशिष्ट श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायों की दृष्टि से ज्ञान की प्ररूपणा का निरूपण करता है तथा अन्तिम परिशिष्ट में 'नन्दी सूत्र' में प्रयुक्त शब्दों का कोश दिया गया है ।

सूत्र के प्रकाशन-कार्य को साधु की दृष्टि से सदोष मान कर भी आचार्य प्रवर ने तीन उद्देश्यों से इस कार्य में सहभागिता स्वीकार की । स्वयं आचार्य श्री के शब्दों में—"पुस्तक मुद्रण के कार्य में स्थानान्तर से ग्रन्थ-संग्रह, सम्मत्यर्थ पत्र-प्रेषण, प्रूफ-संशोधन व सम्मति प्रदान करना आदि कार्य करने या कराने पड़ते हैं । इस बात को जानते हुए भी मैंने जो आगम-सेवा के लिए उस अंशतः सदोष कार्य को अपवाद रूप से किया, इसका उद्देश्य निम्न प्रकार है—

१. साधुमार्गीय समाज में विशिष्टतर साहित्य का निर्माण हो ।

२. मूल आगमों के अन्वेषणपूर्ण शुद्ध संस्करण की पूर्ति हो और समाज को अन्य विद्वान् मुनिवर भी इस दिशा में आगे लावें ।

३. सूत्रार्थ का शुद्ध पाठ पढ़कर जनता ज्ञानातिचार से बचे ।

इन तीनों में से यदि एक भी उद्देश्य पूर्ण हुआ तो मैं अपने दोषों का प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ समझूंगा ।"

आचार्य प्रवर कृत यह उल्लेख उनकी आगम-ज्ञान-प्रसार निष्ठा को उजागर करता है ।

बृहत्कल्प सूत्र :

'श्री बृहत्कल्प सूत्र' पर आचार्य प्रवर ने एक अज्ञात संस्कृत टीका का संशोधन एवं सम्पादन किया था जो प्राक्कथन एवं बृहत्कल्प-परिचय के साथ पांच परिशिष्टों से भी अलंकृत है । इस सूत्र का प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के पुरातन कार्यालय त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर द्वारा कब कराया गया, इसका ग्रन्थ पर कहीं निर्देश नहीं है किन्तु यह सुनिश्चित है कि इस सूत्र का प्रकाशन 'प्रश्न व्याकरण' की व्याख्या के पूर्व अर्थात् सन् १९५० ई० के पूर्व हो चुका था ।

आचार्य प्रवर हस्ती को 'बृहत्कल्प' की यह संस्कृत टीका अजमेर के सुश्रावक श्री सौभाग्यमलजी ढढ्ढा के ज्ञान-भण्डार से प्राप्त हुई जो संरक्षण के अभाव में बड़ी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थी । आचार्य प्रवर जब दक्षिण की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पद यात्रा पर थे तब उन्होंने इसकी प्रतिलिपि करवा कर इसे संशोधित एवं सम्पादित किया। 'बृहत्कल्प' के ये संस्कृत टीकाकार कौन थे, यह ज्ञात नहीं किन्तु यह संकेत अवश्य मिलता है कि श्री सौभाग्य सागर सूरि ने इस सुबोधा टीका को बृहद्टीका से उद्धृत किया था। उसी सुबोधा टीका का सम्पादन आचार्य श्री ने किया।

'बृहत्कल्प सूत्र' छेद सूत्र है जिसमें साधु-साध्वी की समाचारी के कल्प का वर्णन है। आचार्य प्रवर ने सम्पूर्ण कल्प सूत्र की विषय-वस्तु को हिन्दी पाठकों के लिए संक्षेप में 'बृहत्कल्प परिचय' शीर्षक से दिया है जो बहुत उपयोगी एवं सारगर्भित है। अन्त में पांच परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि के क्रम से सूत्र के शब्दों का हिन्दी अर्थ दिया गया है जो ३४ पृष्ठों तक चलता है। द्वितीय परिशिष्ट में पाठ-भेद का निर्देश है। तृतीय परिशिष्ट 'बृहत्कल्प सूत्र' की विभिन्न प्रतियों के परिचय से सम्बद्ध है। चतुर्थ परिशिष्ट में वृत्ति में आए विशेष नामों का उल्लेख है जो शोधार्थियों के लिए उपादेय है। पंचम परिशिष्ट में कुछ विशेष शब्दों पर संस्कृत भाषा में विस्तृत टिप्पण दिया गया है।

यह संस्कृत टीका अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसकी भाषा सरल, सुबोध एवं प्रसाद-गुण से समन्वित है किन्तु इसमें सूत्रोद्दिष्ट तथ्यों का विशद विवेचन है। संस्कृत अध्येताओं के लिए यह टीका आज भी महत्त्वपूर्ण है। आचार्य प्रवर ने जब संस्कृत टीका का सम्पादन किया तब 'बृहत्कल्प सूत्र' के दो-तीन संस्करण निकल चुके थे। आत्मानन्द जैन सभा, भाव नगर से निर्युक्ति, भाष्य और टीका सहित यह सूत्र छह भागों में प्रकाशित हो चुका था किन्तु वह सबके लिए सुलभ नहीं था। डॉ० जीवराज छेला भाई कृत गुजराती अनुवाद एवं पूज्य अमोलक ऋषिजी म० कृत हिन्दी अनुवाद निकल चुके थे तथापि आचार्य प्रवर द्वारा सम्पादित यह संस्कृत टीका शुद्धता, विशदता एवं संक्षिप्तता की दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व रखती है। इसका सम्पादन आचार्य प्रवर के संस्कृत-ज्ञान एवं शास्त्र-ज्ञान की क्षमता को पुष्ट करता है।

प्रश्न व्याकरण सूत्र :

'नन्दी सूत्र' के प्रकाशन के आठ वर्ष पश्चात् दिसम्बर १९५० ई० में 'प्रश्न व्याकरण सूत्र' संस्कृत छाया, अन्वयार्थ, भाषा टीका (भावार्थ) एवं टिप्पणियों के साथ पाली (मारवाड़) से प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन सुश्रावक श्री हस्तीमलजी सुराणा ने कराया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

'प्रश्न व्याकरण सूत्र' का यह संस्करण दो खण्डों में विभक्त है । प्रथम खण्ड में पांच आस्रवों का वर्णन है तो द्वितीय खण्ड में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच संवरों का निरूपण है । परिशिष्ट में शब्द-कोश, विशिष्ट स्थलों के टिप्पण, पाठान्तर-सूची और कथा भाग दिया गया है। यह सूत्र-ग्रन्थ आचार्य प्रवर के विद्वत्तापूर्ण १७ पृष्ठों के प्राक्कथन से अलंकृत है।

पाठान्तरों या पाठ-भेदों की समस्या 'प्रश्न व्याकरण' में 'नन्दी सूत्र' से भी अधिक है । इसका अनुभव स्वयं आचार्य श्री ने किया था। उन्होंने पाठ-भेद की समस्या पर प्राक्कथन में उल्लेख करते हुए लिखा है—"आगम मन्दिर (पालीताणा) जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिला-पट्ट और ताम्र-पत्र पर अंकित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है ।" अतः आचार्य प्रवर ने पाठ-संशोधन हेतु अनेक प्रतियों का तुलनात्मक उपयोग किया था, जिनमें प्रमुख थीं—अभयदेव सूरि कृत टीका, हस्तलिखित टब्बा, ज्ञान विमल सूरि कृत टीका एवं आगम मन्दिर पालीताणा से प्रकाशित मूल पाठ। संशोधित-पाठ देने के बाद आचार्य प्रवर ने पाठान्तर सूची भी दी है जिसमें अन्य प्रतियों में उपलब्ध पाठ-भेद का उल्लेख किया है।

'प्रश्न व्याकरण' के जो पाठ-भेद अधिक विचारणीय थे, ऐसे १७ पाठों की एक तालिका बनाकर समाधान हेतु विशिष्ट विद्वानों या संस्थाओं को भेजी गई जिनमें प्रमुख हैं—१. व्यवस्थापक, आगम मन्दिर पालीताणा २. पुण्य विजयजी, जैसलमेर ३. भैरोंदानजी सेठिया, बीकानेर ४. जिनागम प्रकाशन समिति, ब्यावर एवं ५. उपाध्याय श्री अमर मुनिजी, ब्यावर । तालिका की एक प्रति 'सम्यग्दर्शन' में प्रकाशनार्थ सैलाना भेजी गई, किन्तु इनमें से तीन की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं मिला । 'सम्यग्दर्शन' पत्रिका के प्रथम वर्ष के ग्यारहवें अंक में यह तालिका प्रकाशित हुई, किन्तु किसी की ओर से कोई टिप्पणी नहीं आई।

इस प्रकार साधन-हीन एवं सहयोग रहित अवस्था में भी आचार्य प्रवर ने अथक श्रम एवं निष्ठा के साथ श्रुत सेवा की भावना से 'प्रश्न-व्याकरण' सूत्र का विशिष्ट संशोधित संस्करण प्रस्तुत कर आगम-जिज्ञासुओं का मार्ग प्रशस्त किया।

सिरि अंतगडदसाओ :

आचार्य प्रवर कृत संस्कृत-हिन्दी अनुवाद युक्त 'सिरि अंतगडदसाओ' के दो संस्करण निकल चुके हैं । प्रथम संस्करण सन् १९६५ ई० में निकला

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा दूसरा संस्करण सन् १९७५ ई० में प्रकाशित हुआ । दोनों संस्करणों का प्रकाशन सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से हुआ । प्रथम संस्करण में प्राकृत मूल एवं हिन्दी अर्थ दिया गया था तथा अन्त में एक परिशिष्ट था जिसमें विशिष्ट शब्दों का सरल हिन्दी अर्थ दिया गया था । द्वितीय संस्करण अधिक श्रम एवं विशेषताओं के साथ प्रकाशित हुआ । इस संस्करण में कॉलम पद्धति अपना कर पहले प्राकृत मूल फिर उसकी संस्कृत छाया तथा उसके सामने के पृष्ठ पर शब्दानुलक्षी हिन्दी अर्थ (छाया) तथा अंतिम कॉलम में हिन्दी भावार्थ दिया गया है । इन चारों को एक साथ एक ही पृष्ठ पर पाकर नितान्त मंद बुद्धि प्राणी को भी आगम-ज्ञान प्राप्त हो सकता है तथा तीक्ष्ण बुद्धि प्राणी एक-एक शब्द के गूढ़ अर्थ को समझ सकता है ।

'अंतगड' की पाठ-शुद्धि एवं अर्थ के निरूपण हेतु उपाध्याय श्री प्यार-चन्दजी महाराज द्वारा अनूदित पत्राकार प्रति, सैलाना से प्रकाशित पुस्तक, प्राचीन हस्तलिखित प्रति, आगमोदय समिति, सूरत से प्रकाशित सटीक 'अन्तकृद्दशा सूत्र' और 'भगवती सूत्र' के खंधक प्रकरण का विशेष अवलम्बन लिया गया है । अभयदेव सूरि कृत संस्कृत टीका, प्राचीन टब्बा एवं पं० घासीलालजी महाराज कृत संस्कृत-टीकाओं को भी दृष्टि में रखा गया है ।

द्वितीय संस्करण विशेषत: पर्युषण में वाचन की सुविधा हेतु निर्मित है, जो सूत्र के अर्थ को शीघ्र ही हृदयंगम कराने की अद्भुत क्षमता रखता है । शुद्ध मूल के साथ शब्दानुलक्षी अर्थ की जिज्ञासा रखने वाले पाठकों के लिए यह अत्यन्त उपादेय है । संस्कृत का यत्किंचित ज्ञान रखने वाला पाठक भी मूल आगम का हार्द सहज रूप सेसमझ सकता है ।

'अंतगडदसा सूत्र' का ऐसा कॉलम पद्धति वाला सुस्पष्ट अनुवाद एवं भावार्थ अन्य आचार्यों द्वारा कृत हिन्दी अनुवाद से निश्चित रूप से विशिष्ट है । अन्त में प्रमुख शब्दों का विवेचनयुक्त परिशिष्ट भी इस ग्रंथ की शोभा है ।

उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिक सूत्र :

आगम-ग्रंथों में सर्वाधिक पठन-पाठन 'उत्तराध्ययन' एवं 'दशवैकालिक' सूत्रों का होता है । आचार्य प्रवर ने इनका हिन्दी में पद्यानुवाद करा कर इन्हें सरस, सुबोध एवं गेय बना दिया है । अधुनायावत् आगम-ग्रंथों का हिन्दी पद्यानुवाद नहीं हुआ था किन्तु आचार्य प्रवर की सत्प्रेरणा एवं सम्यक्

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग-दर्शन में पं० शशिकान्त झा ने यह कार्य आचार्य श्री की सन्निधि में बैठकर सम्पन्न किया । स्वयं आचार्य प्रवर ने हिन्दी पद्यानुवाद किया था, ऐसे संकेत भी मिलते हैं किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने इन दोनों आगमों के हिन्दी पद्यानुवाद में अपनी लेखनी से संशोधन, परिवर्धन एवं परिवर्तन किया था। फिर भी आचार्य प्रवर श्रेय लेने की स्पृहा से दूर रहे और हिन्दी पद्यानुवाद-कर्ता के रूप में दोनों ग्रंथों पर पं० शशिकान्त झा का नाम छपा ।

'उत्तराध्ययन सूत्र' तीन भागों में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर द्वारा प्रकाशित हुआ है । प्रथम भाग में १ से १० अध्ययनों, द्वितीय भाग में ११ से २३ अध्ययनों तथा तृतीय भाग में २४ से ३६ अध्ययनों का विवेचन है । ये तीनों भाग श्रीचन्द सुराना 'सरस' के सम्पादकत्व में क्रमशः सन् १९८३ ई०, सन् १९८५ ई० एवं सन् १९८९ ई० में प्रकाशित हुए । तीनों भागों के प्रारम्भ में सम्पादक की ओर से बृहद् प्रस्तावना है । प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में उस अध्ययन का सार दिया गया है जिससे पाठक पाठ्य विषय के प्रति पहले से जिज्ञासु एवं जागरूक हो जाता है । वह अध्ययन भी इस कारण सुगम बन जाता है । प्रथम भाग में मूल प्राकृत गाथा का हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ, भावार्थ एवं विवेचन देने के साथ प्रत्येक अध्ययन के अन्त में कथा-परिशिष्ट दिया गया है, जिसमें उस अध्ययन से सम्बद्ध कथाओं का रोचक प्रस्तुतीकरण है ।

प्राकृत-गाथाओं की संस्कृत छाया भी साथ में प्रस्तुत हो, इस पर आचार्य प्रवर का विद्वद् समाज की दृष्टि से ध्यान गया । विद्वत् समुदाय संस्कृत छाया के माध्यम से प्राकृत गाथाओं के वास्तविक अर्थ को सरलता पूर्वक ग्रहण कर लेता है । अतः 'उत्तराध्ययन सूत्र' के द्वितीय एवं तृतीय भाग में २१ से ३६ अध्ययनों की प्राकृत गाथाओं की संस्कृत छाया भी दी गई है ।

हिन्दी-पद्यानुवाद में यह विशेषता है कि जहां जो हिन्दी शब्द उपयुक्त हो सकता है वहां वह शब्द प्रयुक्त किया गया है । पद्यानुवाद सहज, सुगम, सरल एवं लययुक्त है । मात्र हिन्दी पद्यानुवाद को पढ़कर भी कोई स्वाध्यायी पाठक सम्पूर्ण ग्रंथ के हार्द को समझ सकता है । पद्यानुवाद के अतिरिक्त मूल गाथाओं में विद्यमान क्लिष्ट शब्दों का विवेचन, विश्लेषण एवं विशिष्टार्थ भी किया गया है । इस हेतु श्री शान्त्याचार्य कृत वृहद्वृत्ति एवं आचार्य नेमिचन्द्र कृत चूर्णि का अवलम्बन लिया गया है । विवेचन में प्राचीन टीका-ग्रंथों के साथ आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज कृत 'उत्तराध्ययन'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

की हिन्दी टीका एवं जैन विश्व भारती, लाडनूं से प्रकाशित 'उत्तरज्झयणाणि' का भी सहयोग लिया गया है।

'दशवैकालिक सूत्र' का प्रकाशन मई, सन् १९८३ ई० में सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से हुआ। यह भी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ, भावार्थ एवं टिप्पणियों से अलंकृत है। पद्यानुवाद पं० शशिकान्त झा ने किया है। चतुर्थ अध्ययन के प्राकृत गद्य का भी हिन्दी पद्यानुवाद किया गया है। यह सूत्र पं० बसन्तीलालजी नलवाया की देखरेख में रतलाम से छपा है। इसका भी हिन्दी पद्यानुवाद सरस, सुबोध एवं लयबद्ध है तथा हार्द को प्रस्तुत करता है।

उपसंहार :

आचार्य प्रवर ने 'तत्त्वार्थाधिगम' सूत्र का हिन्दी पद्यानुवाद किया था, ऐसा उल्लेख 'प्रश्न व्याकरण सूत्र' के प्रारम्भ में पं० शशिकान्त झा ने अपनी लेखनी से किया है। वह पद्यानुवाद उपलब्ध नहीं हो पाया है। वह भी नितान्त महत्त्वपूर्ण सूत्र है क्योंकि वह श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों जैन सम्प्रदायों को मान्य है।

श्रुत सेवा की भावना से आचार्य प्रवर ने विभिन्न महत्त्वपूर्ण आगमों की टीकाएँ, अनुवाद, विवेचन, पद्यानुवाद आदि प्रस्तुत कर जो तुलनात्मक दृष्टि प्रदान की है तथा आगम-संशोधन को दिशा प्रदान की है वह विद्वद् समुदाय के लिए उपादेय है। आगमों का पाठ-संशोधन हो यह आवश्यक है। एकाधिक पाठों से सुनिश्चित निर्णय नहीं हो पाता है। हिन्दी पद्यानुवाद एवं सरल हिन्दी अनुवाद से सामान्य स्वाध्यायियों का उपकार हुआ है क्योंकि इनके माध्यम से वे आगम की गहराई तक पहुँचने में सक्षम हुये हैं।

—सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय,
३८७, मधुर I-सी रोड, सरदारपुरा, जोधपुर-३४२००३

★ जिस प्रकार ससूत्र (धागे से युक्त) सुई कहीं गिर जाने पर भी विनष्ट (गुम) नहीं होती, उसी प्रकार ससूत्र (श्रुत-सम्पन्न) जीव भी संसार में विनष्ट नहीं होता।

★ जिस प्रकार कछुआ आपत्ति से बचने के लिए अपने अंगों को सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार पण्डितजन को भी विषयों की ओर जाती हुई अपनी इन्द्रियों को अध्यात्म ज्ञान से सिकोड़ लेना चाहिए।

—भगवान महावीर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org